

पुण्येन पूर्णयोगोसौ यशोधरमहामुनिः। तत्त्वं जगाद जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः प्रपूजितम् ॥३९॥
 तच्छ्रुत्वोपशमं सार-सम्यक्त्वं संगृहीतवान्। तदायुश्चतुराशीति-गुणवर्षसहस्रकम् ॥४०॥
 संचक्रे प्रथमे शीघ्रं नरके प्रस्तरादिमे। किं न स्याद्भव्यमुख्यानां शुभं सद्दर्शनागमे ॥४१॥
 ततः पादान्तिके चित्र-गुप्तनाम महामुनेः। क्षयोपशमिकं प्राप्य सम्यक्त्वं भक्तिनिर्भरः ॥४२॥
 वर्द्धमानजिनेन्द्रस्य पादमूले जगद्गुरोः। गृहीत्वा शुद्धसम्यक्त्वं क्षायिकं मुक्तिदायकम् ॥४३॥
 स्वीचक्रे तीर्थकृत्नाम त्रैलोक्येशैः समर्चितम्। तस्माच्छ्रेणिको भूपस्तीर्थेशः संभविष्यति ॥४४॥
 स जयति जिनदेवः केवलज्ञानदीपः सकलसुरनरेन्द्रैः खेचरेन्द्रैः प्रपूज्यः।
 यदुदितवरवाक्यैर्भाविताः स्वच्छचित्ते भवति विमललक्ष्मीनायकोऽसौ मनुष्यः ॥४५॥

इति कथाकोशे श्रीश्रेणिकनृपस्य कथा समाप्ता।

२०. पद्मरथस्य कथा

श्रीजिनं त्रिजगन्नाथैः समर्चितपदद्वयम्। नत्वा पद्मरथस्योच्चैर्-जिनभक्तकथोच्यते ॥१॥
 देशेऽत्र मगधे रम्ये मिथिलायां महापुरि। राजा पद्मरथो जातो विख्यातो मुग्धमानसः ॥२॥

वे मुनिराज के पास गए और भक्ति से उन्होंने मुनि के चरणों को नमस्कार किया। यशोधर मुनिराज ने श्रेणिक के हित के लिए उपयुक्त समझकर उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासन का उपदेश दिया। उसका श्रेणिक के हृदय पर बहुत ही असर पड़ा। उनके परिणामों में विलक्षण परिवर्तन हुआ। उन्हें अपने कृतकर्म पर अत्यन्त पश्चाताप हुआ। मुनिराज के उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया। इसके प्रभाव से, उन्होंने जो सातवें नरक की आयु का बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरक का रह गया, जहाँ स्थिति चौरासी हजार वर्षों की है। ठीक है सम्यग्दर्शन के प्रभाव से भव्यपुरुषों को क्या प्राप्त नहीं होता? ॥३८-४१॥

इसके बाद श्रेणिक ने श्रीचित्रगुप्त मुनिराज के पास क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया और अन्त में भगवान् वर्द्धमान स्वामी के द्वारा शुद्ध क्षायिक-सम्यक्त्व, जो कि मोक्ष का कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थकर नाम प्रकृति का बन्ध किया। श्रेणिक महाराज अब तीर्थकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे। वे केवलज्ञानरूपी प्रदीप श्रीजिनभगवान् संसार में सदाकाल विद्यमान रहें, जो इन्द्र, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती द्वारा पूज्य हैं और जिनके पवित्र उपदेश के हृदय में मनन और ग्रहण द्वारा मनुष्य निर्मल लक्ष्मी को प्राप्त करने का पात्र होता है, मोक्षलाभ करता है ॥४२-४५॥

२०. पद्मरथ राजा की कथा

इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य जिनभगवान् के चरणों को नमस्कार कर मैं पद्मरथ राजा की कथा लिखता हूँ, जो प्रसिद्ध जिनभक्त हुआ है ॥१॥

मगध देश के अन्तर्गत एक मिथिला नाम की सुन्दरी नगरी थी। उसके राजा थे पद्मरथ। वे बड़े बुद्धिमान् और राजनीति के अच्छे जानने वाले थे, उदार और परोपकारी थे। सुतरा वे खूब प्रसिद्ध थे ॥२॥

एकदासौ महाटव्यां पापद्वयै भूपतिर्गतः। दृष्ट्वैकं शशकं पृष्टे तस्याश्वं वाहयद्भुतम् ॥३॥
 भूत्वैकाकी वने काल-गुहां प्राप्तः स्वपुण्यतः। तत्र दीप्ततपोयोगा-द्विस्फुरत्कान्तिमद्भुतम् ॥४॥
 सुधर्ममुनिमालोक्य रत्नत्रयविराजितम्। शान्तो बभूव सन्तप्तो लोहपिण्डो यथाम्भसा ॥५॥
 तुरंगादर्वतीर्याशु तं प्रणम्य महामुदा। धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥६॥
 सम्यक्त्वाणुव्रतान्युच्चैः समादाय सुभक्तितः। सन्तुष्टः पृष्टवानित्थं सुधीः पद्मरथो नृपः ॥७॥
 भो मुने भुवनाधार-जैनधर्माम्बुधौ विधो। वक्तृत्वादिगुणोपेत-स्त्वादृशः पुरुषोत्तमः ॥८॥
 किं कोपि वर्तते क्वापि परो वा नेति धीधन। सन्देहो मानसे मेऽस्ति ब्रूहि त्वं करुणापरः ॥९॥
 तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह सुधर्मो जैनतत्त्ववित्। शृणु त्वं भो महीनाथ चम्पायां विबुधार्चितः ॥१०॥
 तीर्थकृद्वासुपूज्योस्ति द्वादशो भवशर्मदः। स कोटिभास्करोत्कृष्ट-कान्तिसन्दोहसाधिकः ॥११॥
 तस्य श्रीवासुपूज्यस्य ज्ञानदीप्तिगुणोदये। अन्तरं मे तरां चास्ति मेरुसर्षपयोरिव ॥१२॥
 तदाकर्ण्य मुनेर्वाक्यं धर्मप्रीतिविधायकम्। तत्पादवन्दनाभक्त्यै संजातः सोत्सवो नृपः ॥१३॥
 यावच्चचाल सद्भूत्या प्रभाते प्रीतिनिर्भरः। यावद्धन्वन्तरिर्नाम्ना सुधीर्विश्वानुलोमवाक् ॥१४॥
 तौ सखायौ सुरौ भूत्वा समागत्य महीतले। तस्य भक्तेः परीक्षार्थं मार्गे सङ्गच्छतो मुदा ॥१५॥

एक दिन पद्मरथ शिकार के लिए वन में गए हुए थे। उन्हें एक खरगोश दीख पड़ा। उन्होंने उसके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया। खरगोश उनकी नजर से ओझल होकर न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। पद्मरथ भाग्य से कालगुफा नाम की एक गुहा में जा पहुँचे। वहाँ एक मुनिराज रहते थे। वे बड़े तपस्वी थे। उनका दिव्य देह तप के प्रभाव से अपूर्व तेज धारण कर रहा था। उनका नाम था सुधर्म। पद्मरथ रत्नत्रय विभूषित और परम शान्त मुनिराज के पवित्र दर्शन से बहुत शान्त हुए। जैसे तपा हुआ लौहपिण्ड जल से शान्त हो जाता है। वे उसी समय घोड़े पर से उतर पड़े और मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनके द्वारा धर्म का पवित्र उपदेश सुना। उपदेश उन्हें बहुत रुचा। उन्होंने सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रत ग्रहण किए। इसके बाद उन्होंने मुनिराज से पूछा-हे प्रभो! हे संसार के आधार! इस समय जिनधर्मरूप समुद्र को बढ़ाने वाले आप सरीखे गुणज्ञ चन्द्रमा और भी कोई है या नहीं? और है तो कहाँ हैं? हे करुणासागर! मेरे इस सन्देह को मिटाइए ॥३-९॥

उत्तर में मुनिराज ने कहा-राजन्! चम्पानगरी में इस समय बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य विराजमान हैं। उनके भौतिक शरीर के तेज की समानता तो अनेक सूर्य मिलाकर भी नहीं कर सकते और उनके अनन्त ज्ञानादि गुणों के देखते हुए मुझमें और उनमें राई और सुमेरु का अन्तर है। भगवान् वासुपूज्य का समाचार सुनकर पद्मरथ को उनके दर्शनों की अत्यन्त उत्कण्ठा हुई वे उसी समय फिर वहाँ से बड़े वैभव के साथ भगवान् के दर्शनों के लिए चले। यह हाल धन्वन्तरी और विश्वानुलोम नाम के दो देवों को जान पड़ा। सो वे पद्मरथ की परीक्षा के लिए मध्यलोक में आए। उन्होंने पद्मरथ की भक्ति की दृढ़ता देखने के लिए रास्ते में उन पर उपद्रव करना शुरू किया। पहले उन्होंने उन्हें एक

दर्शयामासतुः कष्टं कालसर्पं तिरोगतम्। मायया छत्रभंगं च पुरो दाहादिकं पुनः ॥१६॥
 वातोद्भूतमहाधूली-पाषाणपतनादिकम्। अकालेऽपि महावृष्टिं निमग्नं कर्दमे द्विपम् ॥१७॥
 मन्त्र्यादिभिस्तदा वार्य-माणोपि बहुधा नृपः। अमङ्गलशते सति गम्यते नैव भूपतेः ॥१८॥
 नमः श्रीवासुपूज्याय भणित्वेति प्रसन्नधीः। कर्दमे प्रेरयामास भक्तिमान्निजकुंजरम् ॥१९॥
 तथाभूतं तमालोक्य जिनभक्तिभरान्वितम्। स्वमायामुपसंहृत्य संप्रशस्य सुरोत्तमौ ॥२०॥
 सर्वरोगापहं हारं भेरीं योजननादिनीम्। धर्मानुरागतस्तस्मै दत्त्वा स्वस्थानकं गतौ ॥२१॥
 यस्य चित्ते जिनेन्द्राणां भक्तिः सन्तिष्ठते सदा। सिध्यन्ति सर्वकार्याणि तस्य नैवात्र संशयः ॥२२॥
 ततो पद्मरथो राजा प्रहृष्टहृदयाम्बुजः। गत्वा चम्पापुरीं तत्र दृष्ट्वा त्रैलोक्यमङ्गलम् ॥२३॥
 समवादिसृतौ संस्थं प्रातिहार्यादिभूषितम्। सुरासुरनराधीश-समर्चितपदद्वयम् ॥२४॥
 केवलज्ञाननिर्णीत-विश्वतत्त्वोपदेशकम्। अनन्तभवसम्बद्ध-महामिथ्यात्वनाशकम् ॥२५॥
 वासुपूज्यजिनाधीशं समभ्यर्च्य सुभक्तितः। स्तुत्वा स्तोत्रैस्तथा नत्वा श्रुत्वा तत्त्वं जिनोदितम् ॥२६॥
 दीक्षामादाय जैनैर्द्वीं पादमूले जिनेशिनः। संजातो गणभृच्चारु-चतुर्ज्ञानविराजितः ॥२७॥

भयंकर कालसर्प दिखलाया, इसके बाद राज्यछत्र का भंग, अग्नि का लगना, प्रचण्ड वायु द्वारा पर्वत और पत्थरों का गिरना, असमय में भयंकर जलवर्षा और खूब कीचड़मय मार्ग और उसमें फँसा हाथी आदि दिखलाया। यह उपद्रव देखकर साथ के सब लोग भय के मारे अधमरे हो गए। मंत्रियों ने यात्रा अमंगलमय बतलाकर पद्मरथ से पीछे लौट चलने के लिए आग्रह किया परन्तु पद्मरथ ने किसी की बात नहीं सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ “नमः श्रीवासुपूज्याय” कहकर अपना हाथी आगे बढ़ाया। पद्मरथ की इस प्रकार अचल भक्ति देखकर दोनों देवों ने उनकी बहुत-बहुत प्रशंसा की। इसके बाद वे पद्मरथ को सब रोगों को नष्ट करने वाला एक दिव्य हार और एक बहुत सुन्दर वीणा, जिसकी आवाज एक योजन पर्यन्त सुनाई पड़ती है, देकर अपने स्थान चले गए। ठीक कहा है-जिनके हृदय में जिनभगवान् की भक्ति सदा विद्यमान रहती है, उनके सब काम सिद्ध हों, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥१०-२२॥

पद्मरथ ने चम्पानगरी में पहुँच कर समवसरण में विराजे हुए, आठ प्रातिहार्यों से विभूषित, देव, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य, केवलज्ञान द्वारा संसार के सब पदार्थों को जानकर धर्म का उपदेश करते हुए और अनन्त जन्मों में बाँधे हुए मिथ्यात्व को नष्ट करने वाले भगवान् वासुपूज्य के पवित्र दर्शन किए, उनकी पूजा की, स्तुति की और उपदेश सुना। भगवान् के उपदेश का उनके हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ा। वे उसी समय जिनदीक्षा लेकर तपस्वी हो गए। प्रव्रजित होते ही उनके परिणाम इतने विशुद्ध हुए कि उन्हें अवधि और मनःपर्ययज्ञान हो गया। भगवान् वासुपूज्य के वे

अतो भव्यैः सदा कार्या जिनभक्तिः सुशर्मदा । त्यक्त्वा मिथ्यामतं शीघ्रं स्वर्गमोक्षसुखाप्तये ॥२८॥
यथा पद्मरथो राजा जिनभक्तिपरोभवत् । अन्यैश्चापि महाभव्यै-र्भवितव्यं तथा श्रिये ॥२९॥
यद्भक्तिर्भुवनत्रयेऽत्र नितरां निर्वाणसंसाधिनी सामान्येन सुरेन्द्रखेचरनराधीशादिशर्मप्रदा ।
स श्रीमान्मुनिपुंगवः शुचितरः सत्केवलोद्योतकोदद्यात्सारसुखं समस्तजगतो पूज्यः सतां सेवितः ॥३०॥

इति कथाकोशे जिनभक्तपद्मरथस्य कथा समाप्ता ।

२१. पञ्चनमस्कारमंत्रप्रभावकथा ।

नत्वा पंच गुरुभक्त्या पञ्चमीगतिसिद्धये । कथा पञ्चनमस्कार-फलस्योच्चैर्निगद्यते ॥१॥
अंगदेशे सुविख्याते चम्पायां चारुलोचनः । प्रतापनिर्जिताराति-र्जातो राजा नृवाहनः ॥२॥
श्रेष्ठि वृषभदासाख्यो-र्हृद्वासी मानसप्रियः । श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोज-सेवनैकलसत्क्रियः ॥३॥
श्रेष्ठिनस्तस्य गोपालः कदाचित्पुण्ययोगतः । स्वेच्छया गृहमागच्छन्नरण्ये भुवनोत्तमम् ॥४॥

गणधर हुए। इसलिए भव्य पुरुषों को उचित है कि वे मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष को देने वाली जिनभगवान् की भक्ति निरन्तर पवित्र भावों के साथ करें और जिस प्रकार पद्मरथ सच्चा जिनभक्त हुआ, उसी प्रकार वे भी हों ॥२३-२९॥

जिनभक्ति सब प्रकार का सांसारिक सुख देती है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति का कारण है, जो केवलज्ञान द्वारा संसार के प्रकाशक हैं और सत्पुरुषों द्वारा पूज्य हैं, वे भगवान् वासुपूज्य सारे संसार को मोक्ष सुख प्रदान करें, कर्मों के उदय से घोर दुःख सहते हुए जीवों का उद्धार करें ॥३०॥

२१. पंच नमस्कार मंत्र-माहात्म्य कथा

मोक्षसुख प्रदान करने वाले श्रीअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को नमस्कार कर पंच नमस्कार मंत्र की आराधना द्वारा फल प्राप्त करने वाले सुदर्शन की कथा लिखी जाती है ॥१॥

अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी में गजवाहन नाम के एक राजा हो चुके हैं। वे बहुत खूबसूरत और साथ ही बड़े भारी शूरवीर थे। अपने तेज से शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सारे राज्य को उन्होंने निष्कण्टक बना लिया था। वहीं वृषभदत्त नाम के एक सेठ रहा करते थे। उनकी गृहिणी का नाम था अर्हद्वासी। अपनी प्रिया पर सेठ का बहुत प्रेम था। वह भी सच्ची पतिभक्ति परायणा थी, सुशीला थी, सती थी, वह सदा जिनभक्ति में तत्पर रहा करती थी ॥२-३॥

वृषभदत्त के यहाँ एक ग्वाल नौकर था। एक दिन वह वन से अपने घर पर आ रहा था। समय शीतकाल का था। जाड़ा खूब पड़ रहा था। उस समय रास्ते में उसे एक ऋद्धिधारी मुनिराज के दर्शन हुए, जो कि एक शिला पर ध्यान लगाये बैठे हुए थे। उन्हें देखकर ग्वाले को बड़ी दया आयी। वह